सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों का संशोधन

विषय पर

एक सौ उन्हत्तरवीं रिपोर्ट

अप्रैल 1999

न्यायमूर्ति
बी॰ पी॰ जीवनरेड्डी
चेयरमैन, भारत का विधि आयोग

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3384475
निवास :

1, जनपथ
नई दिल्ली-110 011
दूरभाष : 3019485

अ॰ श॰ सं॰ 6(3)(58)/99-एल॰ सी॰ (एल॰ एस॰)

प्रिय, श्री कुमारमंगलम,

मैं एतद्द्वारा ''सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों का संशोधन'' के बारे में 169वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूं।

2. यह विषय **लैफ्टीनेंट कर्नल पृथीपाल सिंह** बनाम **भारत संघ 1982(3) सु. को. 140** मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए स्वयंमेव लिया गया था। जिसमें सेना अधिनियम में एक गम्भीर त्रुटि अर्थात कोर्ट्स मार्शल के आदेशों के विरुद्ध अपील के उपचार के अभाव तथा कोर्ट्स मार्शल द्वारा अपने निष्कर्षों एवं आदेशों के समर्थन में कारण अभिलिखित करने की वांछनीयता को प्रकाश में लाया गया है। न्यायालय ने इस मामले में अपनी सिफारिशें देते हुए ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे अन्य देशों में हुई प्रगति की भी पुनरीक्षा की है।

3. इस रिपोर्ट में अन्तर्विहित विचार यह है कि सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन का अनुरक्षण रखते हुए व्यक्ति के निजी गौरव को भी सम्मान दिया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि सशस्त्र सेनाएं समाज के श्रेष्ठतम तत्वों की सेवाओं से वंचित न रह जाए और उनमें से उज्जवल तथा साहसी व्यक्ति सेनाओं में इस कारण से प्रवेश न करना चाहे कि सशस्त्र सेनाओं में न्याय प्राप्त कर पाने के लिए पर्याप्त तन्त्र की व्यवस्था नहीं है या इस भय से प्रवेश न करे कि उन्हें बिना कोई अपराध किये अथवा अपराध के अननुपात में दण्डित किया जा सकता है। सशस्त्र सेनाओं में आचरण के उच्च स्तरमान तथा अनुशासन पर सम्यक ध्यान देते हुए, सेना में अधिकारियों के हितों की सुरक्षा के लिए एक प्रभावी न्यायप्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है। न्याय तथा अनुशासन साथ-साथ चलने चाहिएं।

4. क्योंकि पृथी पाल सिंह के मामले में दिये गये निर्णय के अनुसरण में संसद ने अभी तक कोई कार्यवाही नहीं की है, विधि आयोग ने इस विषय पर विद्यमान विधियों की पुनरीक्षा करना उपयुक्त समझा है।

5. विधि आयोग ने अपने निष्कर्षों को अन्तिम रूप देने से पूर्व तीनों सशस्त्र सेनाओं के सेवानिवृत तथा सेवारत अधिकारियों के साथ विस्तार से चर्चा की है।

6. इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों में इस विषय पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये अपने निर्णय में बतायी गयी कमियों को, कोर्ट्स मार्शल के आदेशों के विरुद्ध अपीलों को शीघ्र निपटाने के उपायों का सुझाव देते हुए, दूर करने का प्रयास किया गया है। इस रिपोर्ट में सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों की सेवा शर्तों से संबंधित शिकायतों के शीघ्र समाधान के लिए कतिपय उपायों की भी सिफारिश की गई है।

सादर,

भवदीय,

ह॰

(बी॰ पी॰ जीवनरेड्डी)

श्री पी॰ कुमारमंगलम,
विधि, न्याय और कं॰ कार्य मंत्री,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

विषय-सूची

		पृष्ठ
अध्याय एक	प्रस्तावना	1
अध्याय दो	भारतीय सैन्य विधि-उद्भव और विस्तार	2
अध्याय तीन	भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियाँ	4
अध्याय चार	सुसंगत सांविधिक उपबन्ध	6
अध्याय पाँच	उद्देश्य किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते है	8
अध्याय छ:	अन्य निष्कर्ष	9
अध्याय सात	सिफारिशें	12
	टिप्पणियाँ और संदर्भ	14

अध्याय एक

प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य : इस रिपोर्ट में अन्तर्निहित विषय, जिसे विधि आयोग ने स्वयंमेव अध्ययन हेतु ग्रहण किया गया है, यह है कि सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन का निर्वाह करते समय व्यक्ति के निजी गौरव को भी सम्मान दिया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि सशस्त्र सेनाएं समाज के श्रेष्ठतम तत्वों की सेवाओं से वंचित न रह जाए और उनमें से उज्जवल तथा साहसी व्यक्ति सेनाओं में इस कारण प्रवेश न करना चाहे कि सशस्त्र सेनाओं में न्याय प्राप्त कर पाने के लिए पर्याप्त तंत्र की व्यवस्था नही है या इस भय से प्रवेश न करें कि उन्हें बिना कोई अपराध किए अथवा अपराध के अननुपात में दण्डित किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करना भी इतना ही आवश्यक है कि दण्ड अपराध के अनुपात में असमान नहीं हो और साथ ही सैन्य विधि को विकसित देशों की सशस्त्र सेनाओं की संस्कृति के अनुरूप बनाने की दृष्टि से अधिक मानवीय व गतिशील बनाया गया है। यह स्मरण रखना होगा कि एक सैनिक का जीवन सुविधाजनक नहीं है। अधिकतम समय वह अपने परिवार से दूर रहता है। देश की सुरक्षा में गौरव और बलिदान की भावना ही उसे अविचल और उत्साहित रखती है। उसे देश के अन्य नागरिकों को सुलभ न्याय से वंचित रखना कदापि उचित नहीं होगा। यह भी स्मरण रखना होगा कि सैन्य अनुशासन केवल वरिष्ठ/उत्कृष्ट अधिकारियों के प्रभुत्व तथा उनके आदेशों के दृढ़निष्ठ अनुशासन पर आधारित नहीं रह सकता। वरिष्ठ अधिकारियों को अपने अधीनस्थों से सम्मान और निष्ठा पाने के लिए अपनी सक्षमता और तकनीकी दक्षता का सतत प्रदर्शन करते रहना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखते हुए बहुत से लोकतान्त्रिक राष्ट्रों ने निरंकुश (स्वेच्छाचारी) कार्यवाही के विरुद्ध अधिक संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से अपनी सैन्य विधियों को फिर से लेखबद्ध करने की आवश्यकता महसूस की है। यह कहना ठीक नही है कि क्योंकि सैन्य कानून और कोर्ट्स मार्शल से बहुत कम लोग प्रभावित होते हैं अथवा क्योंकि सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों ने विद्यमान प्रणाली के प्रति उसमें समस्त दोषों के विद्यमान रहते भी, अपने को समर्पित कर दिया है इसलिए विधि में सुधार की कोई आवश्यकता नही है। यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि सैन्य न्याय प्रणाली का विकास व्यवहार के कतिपय मानकों के प्रवर्तन के लिए हुआ है जिनमें से कुछ नागरिक जीवन में प्रवर्तित मानकों के समरूप है। सशस्त्र सेनाओं में व्यवहार और अनुशासन के उच्चतर मानक न केवल युद्ध तन्त्र को तत्पर और सक्षम रखने के लिए आवश्यक है अपितु सशस्त्र सेनाओं के प्रति जनता का सम्मान प्राप्त करने के लिए भी। न्याय और अनुशासन साथ-साथ चलने चाहिएं।

1.2 यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कोर्ट्स मार्शल के निर्णय तथा निष्कर्ष आज भी उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय के दखल से पूर्णतया वर्जित नहीं है। इन मामलों में प्रत्येक उच्च न्यायालय द्वारा अपनाये जाने वाले अपने-अपने दृष्टिकोण के स्थान पर सभी तीनों अभिनियमितियों के अधीन कोर्ट्स मार्शल के निष्कर्षों, निर्णयों तथा आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई के लिए एक पृथक अपीलीय न्यायाधिकरण का सृजन वांच्छनीय और श्रेष्ठतर अनुशासन के लिए सहायक सिद्ध होगा। थल सेना अधिनियम व वायुसेना अधिनियम, 1949-50 में अधिनियमित किए गए थे जो अधिकांशत: ब्रिटिश अधिनियमों पर आधारित है। जबकि ब्रिटेन की विधि में अनेकों प्रगतियां हुई हैं जैसा कि यहां इससे पूर्व में बताया गया है, भारत में सैन्य विधि न्यूनाधिक रूप भूतकालिक विधियों पर ही आधारित है। इस रिपोर्ट में परिस्थितियों में कतिपय दशाओं में सुधार करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय दो

भारतीय सैन्य विधि--उद्‌भव और विस्तार

(i) प्रस्तावना

2.1 **भारतीय सेना का उद्‌भव :** भारतीय सैन्य कानून के उद्‌भव का संक्षिप्त विवरण सैन्य विधि मैन्युअल[1] में दिया गया है। भारतीय सेना का उत्कर्ष इसके बहुत छोटे प्ररम्भ से हुआ है। सत्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सूरत, मछलीपट्‌टम, अरमागन, मद्रास, हुगली और बालासोर में स्थापित किए गए कारखानों या व्यापार केन्द्रों की सुरक्षा के लिए गार्ड्‌स की भर्ती की गयी। शुरू-शुरू में इन गार्डों की भर्ती के पीछे आशय सुरक्षा कार्य के साथ-साथ मुख्य अधिकारियों की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करना भी था और कुछ मामलों में सन्धिपत्र द्वारा इनकी भर्ती संख्या पर विशेष प्रतिबन्ध भी लगाये गये थे जिससे कि वह कोई सैन्य महत्ता ग्रहण न कर लें। फिर भी धीरे-धीरे गार्डो के इस संगठन की उन्नति होती गयी और उनसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के यूरोपीय तथा भारतीय सैन्य दलों का उदय हुआ। 1857 तक इन दोनों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही, और इनकी संख्या (स्थानीय बल, आकस्मिक बल तथा 38,000 मिलिट्री पुलिस जवानों सहित) अधिकारियों और सहित 3,11,038 तक पहुँच गई (इम्पीरियल गजेटियर ऑफ bf.M;k 1907 okY;w IV (अध्याय XI)।

2.2 **ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सैन्य विद्रोह अधिनियम :** ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैन्य दलों में अनुशासन के लिए सर्वप्रथम वैधानिक प्रावधान 1754 में पारित किए गए (27जी॰ ई॰ ओ॰ II, केप 9) द्वारा किए गए जिनका उद्‌देश्य ईस्ट इंडीज में व्यापार करने वाली इंग्लैण्ड के व्यापारियों की युनाइटेड कम्पनी में सेवारत अधिकारियों और जवानों द्वारा सैन्य विद्रोह तथा पलायन के लिए और ईस्ट इंडीज में अथवा सेंट हेलेना द्वीप में अपराध करने के लिए दंडित करना था। इस अधिनियम की धारा 8 में ''क्राउन'' को इन सैन्य दलों के शासन के लिए युद्ध की नियमावली बनाने की शक्ति प्रदान की गई थी और तद्‌नुसार नियमावलियाँ बनाई गयीं तथा प्रकाशित करायी गई। अधिनियम के निबंधन यूरोपीय तथा भारतीय दोनों प्रकार के दलों पर, लागू किए जाने की दृष्टि पर्याप्त रूप में विस्तृत थे किन्तु नियमावलियों की भाषा से यही प्रकट होता था कि वे मूलत: यूरोपियंस के ही लिए आशयित थी तथापि, किसी अन्य संहिता के अभाव में, बंगला, मद्रास तथा बम्बई की सरकारों ने अपने पोषित भारतीय सैन्यदल के निकायों के लिए भी, भारतीय सेना जिसका उत्तराधिकारी है, कतिपय उपांतरों और परित्यक्तियों के साथ इन्हीं नियमावलियों को लागू किया। 1813 में, भारतीय सैन्य दलों के लिए विद्यमान अनुशासन प्रबन्धों की कानूनी वैधता के प्रति उठे सन्देहों के कारण अधिनियम (53 जी॰ ई॰ ओ॰ III, केप॰ 155, एस॰ एस॰ 96 और 97) में उपबंध अन्त: स्थापित किए गए जो कम्पनी के विशेषाधिकारों को एक और समयावधि तक बढ़ाने के लिए उसी वर्ष पारित किया गया और जिसने विद्यमान प्रणाली को कानूनी वैधता प्रदान की तथा फोर्ट विलियम, फोर्ट सेंट जार्ज और बम्बई की प्रत्येक सरकार को उनकी अपनी-अपनी सेवा में भी भारतीय अधिकारियों और सैनिकों के शासन के लिए नियम, विनियम तथा युद्ध नियमावली बनाने की शक्ति प्रदान की। 1824 (4 जी॰ ई॰ ओ॰ IV, केप॰ 81, एस॰ 63) में फिर यह प्रावधान किया गया कि ऐसा विधान प्रत्येक प्रेसिडेंसी के भारतीय सैन्य दलों पर, वे चाहे जहाँ सेवारत हो, चाहे वे ''हिज मैजेस्टीज'' के अधिकार क्षेत्र में या उसके बाहर।

2-3 **प्रत्येक प्रेसिडेंसी द्वारा अपनी संहिता की संरचना :** इन दो अधिनियमों की विधिस्थापित स्वीकृति के अधीन प्रत्येक प्रेसिडेंसी सरकार ने एक सैन्य संहिता की संरचना की और इसे अपने सैन्य दलों के लिए लागू किया गया। इन संहिताओं में भी अधिकांशत: उन युद्ध नियमों का ही अनुसरण किया गया जो कम्पनी के योरोपीय सैनिकों पर लागू होती थी किन्तु भारतीय अफसरों के लिए केवल मृत्युदंड, बर्खास्तगी, निलम्बन और प्रताड़ना जैसे दंड के प्रावधान प्रतीत होते थे तथा भारतीय जवानों को मृत्युदंड और दैहिक यातना। निर्वासन तथा कारावास जैसे दंड की व्यवस्था नहीं थी।

(ii) युद्ध की नियमावली

2.4 **गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट, 1833 तथा ''युद्ध की नियमावली'':** गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट, 1833 (3 और विल, IV केप 85) की धारा 73 के द्वारा सम्पूर्ण भारतीय सेनाओं के लिए विधान बनाने की शक्ति गवर्नर जनरल ऑफ काउन्सिल के लिए सीमित कर दी गयी तथा इस प्रकार बनाये गये कानूनों को सामान्य रूप से सभी भारतीय अधिकारियों व जवानों के लिए प्रभावी बनाया गया चाहे वे कहीं भी सेवारत हों। 1833 के अधिनियम द्वारा भारतीय विधायिका को प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत उसने 1845 में पहली बार, उनके लिए गवर्नर जनरल इन काउन्सिल द्वारा अधिनियमित की जा रही युद्ध नियमावली में उस वर्ष के अधिनियम XX-1845, भारतीय अधिकारियों और जवानों के लिए एक सामान्य संहिता बनायी। कुछ ही समय पश्चात् यह अधिनियम 1847 के अधिनियम XIX द्वारा निरस्त हो गया और प्रतिस्थापित हो गया और यह अधिनियम एक्ट्‌स ऑफ गवर्नर जनरल इन कौंसिल VI ऑफ 1850, XXXVI ऑफ 1850, III ऑफ 1854, X ऑफ 1856, 1857 का VIII, 1857 का XXII तथा 1869 का VI इन दी इन्टरवीनिंग पीरियड बार बार संशोधित होते हुए अन्त में 1861 के अधिनियम XXXIX द्वारा निरस्त हो गया। यह अधिनियम भी 1869 के अधिनियम द्वारा ''युद्ध की भारतीय नियमावली'' और इस अधिनियम ने इसका स्थान ग्रहण किया। इस अधिनियम की प्रस्तावना में बताया गया है कि जिन्हें सामन्यत: अनुगामी जाना जाता है उनके अस्तित्व की मान्यता को

पहली बार स्वीकृति प्रदान की गयी तथा अधिनियम V उन पर समान रूप से लागू किया गया।

2.5 **1894 में नियमावलियों का संशोधन :** प्रेसिडेंसीयों की तीनों सेनाओं का 1895 में एक में विलीनीकरण के पश्चात् ''भारतीय युद्ध नियमावलियों'' में कतिपय संशोधनों की आवश्यकता अनुभव की गई। ये संशोधन 1894 के अधिनियम XII तथा इस अधिनियम द्वारा संशोधित ''भारतीय युद्ध नियमावलियों'' और विभिन्न अल्प संशोधनकारी अधिनियमों द्वारा प्रभावकारी हुए (एक्ट्‌स ऑफ गवर्नर जनरल इन कौन्सिल XII ऑफ 1891, I ऑफ 1900, I ऑफ 1901, IX ऑफ 1901, XIII ऑफ 1904 तथा V ऑफ 1905) और इन्होंने 1911 तक भारतीय सैन्य संहिता को विधिसम्मत आधार प्रदान किया। जैसे समय बीतता गया और भारतीय सेनाओं ने साम्राज्य की ब्रिटिश सेनाओं की जिम्मेदारियों में भाग लेना आरम्भ किया तो पाया गया कि तीनों पृथक स्थानीय सेनाओं के लिए, जो प्रत्येक अपनी-अपनी प्रेसिडेंसी में सेवारत थी, मूल रूप में बनाया गया अधिनियम विद्यमान परिस्थितियों में उस सेना में पर्याप्त अनुशासन स्थापित करने में असफल था। मूल नियमावलियों में अधिरोपित भारी संशोधनों के चलते उन्हें समझ पाना प्राय: कठिन था और कभी-कभी विरोधाभासी भी।

2.6 **भारतीय सेना अधिनियम 1911 :** इसलिए, 1908 में फिर से भारतीय नियमावलियों में संशोधन करने के कार्य को किया गया किन्तु तत्समय विषय पर विचार करने से प्रकट हुआ कि एक नया एकत्रीकृत तथा संशोधनकारी अधिनियम आवश्यक होगा। 1869 की नियमावलियों में कोई और संशोधन केवल वर्तमान भ्रान्तियों को मुखरित ही करेगा। इस प्रकार भारतीय सेना ने संबंधित वर्तमान विधियों को एकीकृत करते हुए भारतीय सेना अधिनियम एक सरल, व्यापक तथा ऐसे प्रावधानों--जो अनुभव से प्रकाश में आने पर आवश्यक लगे--से युक्त विधि मार्च 1911 में विधिवत् पारित की जिसे प्रथम जनवरी 1912 को लागू किया गया। इस विषय से संबंधित पूर्ववर्ती समस्त अधिनियम उक्त अधिनियम की धारा 127 द्वारा निरस्त कर दिए गये। इस अधिनियम में समय-समय पर अन्य संशोधनकारी अधिनियमों द्वारा संशोधन किए गए यथा--(एक्ट्‌स ऑफ गवर्नर जनरल इन कौन्सिल 1914 का XV, 1917 का X, 1918 का XI, 1919 का XVIII, 1920 का II, 1920 का XXXVII, 1934 का XXXIII तथा 1935 का VII)।

2.7 **भारतीय सेना (दंडों का निलम्बन) 1920 :** 1914--18 युद्ध के दौरान दंड के निलम्बन के प्रावधान हेतु अस्थायी युद्ध अधिनियम (एक्ट्‌स ऑफ गवर्नर जनरल इन कौन्सिल 1917 का IV, तथा 1918 का XVII) पारित किये गये थे। ये उपाय लाभकारी पाये गये और 23 मार्च 1920 को एक स्थायी अधिनियम पारित किया गया जिसमें भारतीय सेना अधिनियम के अधीन लोगों को कोर्ट्‌स मार्शल द्वारा दी गयी कारावास तथा निर्वासन के दंडों को निलम्बित किये जाने का प्रावधान था और यह अधिनियम अस्थायी अधिनियमों को निरस्त करते हुए लागू हुआ। यह अधिनियम जो कि ''भारतीय सेना (दंडों का निलम्बन) अधिनियम'' (एक्ट ऑफ गवर्नर जनरल इन कौन्सिल 1920 का XX) के रूप में जाना गया भारतीय सैन्य अधिनियम के साथ एक अधिनियम के रूप में पठित होना था।

2.8 **सेना अधिनियम 1950 :** 1947 के कुछ समय पूर्व भारतीय सेना अधिनियम 1911 के एक सामान्य पुनरावलोकन की आवश्यकता अनुभव की गयी। आधुनिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में उक्त अधिनियम के कुछ प्रावधान समयातीत व अपर्याप्त हो चुके थे किन्तु 15 अगस्त 1947 के पश्चात स्पष्ट कारणों से पुनरावलोकन की आवश्यकता प्रबल हो गयी थी। फलस्वरूप नियमित सेना के शासन सम्बन्धी कानून को समेकित व संशोधित करने हेतु एक विधेयक भारत की विधान सभा में 21 दिसम्बर 1949 को पुर:स्थापित किया गया। यह विधेयक संसद द्वारा सेना अधिनियम 1950 (1950 का अधिनियम XLVI) के रूप में 20 मई को पारित हुआ और 22 जुलाई 1950 से लागू हुआ। इसके पश्चात जिन संशोधनकारी अधिनियमों द्वारा संशोधन किये गये वे--एक्ट्‌स XIX ऑफ 1955, XXXVI ऑफ 1957 हैं जो 3 ए॰ एल॰ ओ॰ द्वारा व्यवहार्य किये गये।

2.9 **नियम तथा अन्य ''अधीनस्थ विधान'' :** सेना की वर्तमान सैन्य संहिता इस प्रकार सेना अधिनियम 1950 में समाविष्ट है। कुछ नियम तथा अन्य विषय जो सेना अधिनियम के निर्वहन हेतु इसमें इस कार्य के लिए शक्ति प्रदत्त अधिकारियों द्वारा बनाये गये है--कानून की शक्ति रखते हैं। ''अधीनस्थ विधान'' की इस परवर्ती श्रेणी के उदाहरण केन्द्र सरकार द्वारा सेना अधिनियम की धारा 191 के अन्तर्गत बनाये गये सेना नियम 1954 है तथा वे जो ''संक्षिप्त और अल्प दंड'' सेना विनियम 1962 के पैरा 443 में रखें गये है जो अपनी विधिसम्मत शक्ति सेना अधिनियम की धारा 82 के परिपालन में केन्द्रीय सरकार की सहमति से सी॰ ओ॰ ए॰ एस॰ द्वारा दिये गये आदेशों से ग्रहण करते हैं।

अध्याय तीन

भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियाँ

3.1 **लैफ्टिनेंट कर्नल पृथी पाल सिंह का मामला :** उच्चतम न्यायालय ने 1982 में **लैफ्टिनेंट कर्नल पृथी पाल सिंह बनाम भारत संघ**[1] के मामले में सेना अधिनियम में एक स्पष्ट दोष बताया है अर्थात कोर्ट्स मार्शल के आदेशों के विरुद्ध अपीलीय उपचार का अभाव। न्यायालय ने हाल की दशाब्दियों में ब्रिटेन और अमरीका में इस विषय में किए गए परिवर्तनों की ओर भी संकेत किया है और यह टिप्पणी की है कि प्रणाली में हुए मूल्य परिवर्तनों के अनुरूप संसद में एक ऐसा ही विधान लाया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि अपने निष्कर्षों और आदेशों के समर्थन में कोर्ट्स मार्शल द्वारा कारणों का अभिलिखित किया जाना वांछनीय है। उक्त निर्णय के पैरा 44 और 45 में उच्चतम न्यायालय की संगत टिप्पणियों को देखना उपयुक्त होगा :--

> ''अधिकांशत: सिविल विधि से संबंधित सेना के आन्तरिक मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की अनिच्छा से सैनिकों के मस्तिष्क में एक गलत स्थिति पैदा हो सकती है कि सेना अधिनियम के अधीन आने वाले व्यक्ति भारत के नागरिक नहीं हैं। यह हमारे संविधान का एक महत्वपूर्ण तत्व है कि कोई व्यक्ति सशस्त्र सेना में भर्ती अथवा प्रवेश पाने से नागरिकता से वंचित नहीं हो जाता है ताकि वह संविधान के अन्तर्गत प्राप्त अपने अधिकारों से ही वंचित हो जाए। इससे भी अधिक, इस न्यायालय ने **सुनिल बत्रा** बनाम **दिल्ली प्रशासन** (1979) आई. एस. सी. आर., 392, 495 में यह अभिनिर्धारित किया है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित कैदी भी अपने मूल अधिकारों से पूर्णतया वंचित नहीं होते। राष्ट्रीय सुरक्षा और सैन्य अनुशासन के अधिकाधिक हित में संसद अपने विवेक से सशस्त्र सेनाओं के लिए ऐसे अधिकारों के उपयोग को निर्बन्धित या रद्द कर सकती है परन्तु यह प्रक्रिया उस सीमा तक नहीं पहुँचनी चाहिए कि नागरिकों का ऐसा वर्ग बन जाए जो संविधान की उदार भावनाओं के लाभों का हकदार ही न रहे। सेना अधिनियम के अधीन आने वाले व्यक्ति भी इस प्राचीन देश के नागरिक हैं जिनके अन्दर यह भावना विद्यमान है कि वे स्वतंत्रता प्रधान संविधान से शासित सभ्य समाज के सदस्य हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मानव की महत्ता की परिचायक है और यह एक आशयित और बहुमूल्य अधिकार है। इसके अपवचन से पूर्व एक सत्यनिष्ठ तथा निष्पक्ष न्यायाधीश द्वारा निष्पक्ष, न्यायोचित तथा तर्क संगत प्रक्रिया और विचारण द्वारा जो ˇ की जानी चाहिए . . . . . . **साक्ष्य, विधिक व्यवस्था ि ष्कर्ष तथा दंड की पर्याप्तता अथवा अन्यथा आदि बातों का पुन क्षण करने की शक्ति के साथ एक भी अपील करने का प्रावध । न होना किसी ऐसे देश में एक स्पष्ट दोष है** जहाँ किसी दू रे नागरिक अपराधी को विभिन्न न्यायालयों में एक के बाद ए ╕ अपील करने का अधिकार है। **यह आग्रह एक धैर्य मात्र है ।क धारा 153 के अधीन निष्कर्ष और/अथवा पुष्टीकरण कार्यवाही में दंडादेश के पूर्णतया पुनरीक्षण की व्यवस्था है।** अपीलीय शक्तियों के साथ न्यायालयों के शासन की, जहाँ प्रत्येक न्यायालय को न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति प्राप्त हो, सफलता के विपरीत पाया गया है परन्तु यह विचार भी निराशाजनक प्रमाणित हुआ है क्योंकि एक भी मामले में न्यायिक पुनरीक्षा नही हुई है। प्रशासनिक निर्णयों में भी कार्यवाही ने निष्पक्षता के विस्तृत होते हुए क्षेत्र, मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा और प्रतिशोधात्मक न्याय को सभ्य समाज का प्रचलन मानने के साथ ही **अब समय आ गया है जब गैर सैनिक व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों से गठित निकाय द्वारा कम से कम एक पुनरीक्षा और वह भी न्यायिक पुनरीक्षा की व्यवस्था करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।** ऐसा विदेशी आक्रमण को विफल करने तथा आन्तरिक अशान्ति को कुचलने के लिए सदैव तत्पर रहती है ताकि शान्तिप्रिय नागरिक विधि सम्मत शासन पर आधारित समाज में शान्तिपूर्ण जीवन जी सकें। इस प्रकार की शान्ति व्यवस्था के संरक्षकों को इस प्रकार के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता । यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि अपील करने के अधिकार तथा धारा 153 के अधीन पुष्टीकरण की प्रक्रिया को न्यायोचित नहीं माना गया है और इसे एक दिखावटी सहानुभूति का रूप दिया गया है। **महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या गैर–सैनिक कार्मिकों से गठित एक निकाय के समक्ष, जिसे विधि तथा तथ्यों दोनों प्रश्नों पर न्यायिक पुनरीक्षा का अधिकार प्राप्त हो, कम से कम एक अपील की व्यवस्था होनी चाहिए** जो यह सुनिश्चित कर सके कि क्या आरोपित अपराध की गम्भीरता के अनुरूप दंड पर्याप्त है। तथ्यों और विधि के बारे में निष्पक्ष रूप से विचार करने हेतु अनुभव द्वारा प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा साक्ष्य के निष्पक्ष विश्लेषण में निष्णान्त व्यक्तियों का न्यायिक दृष्टिकोण, निष्पक्षता तथा न्याय को सैनिक अनुशासन की वेदी पर बलि नहीं चढ़ाया जा सकता। **अनुचित निर्णय अनुशासन के लिए विध्वंसकारी हैं। दोनों का न्यायोचित सम्मिश्रण होना अनिवार्य है।** और कोई क्रान्तिकारी सुझाव भी नहीं दिया जा रहा है। हमारा सेना अधिनियम अधिकाधिक रूप में ब्रिटेन के अधिनियम की पद्धति पर आधारित था। इसके कार्यकरण की तीन दशाब्दियों में जबकि विश्व आज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है यह आवश्यक हो गया है कि इस विषय पर पुनर्विचार किया जाए ताकि इसे स्वतंत्रता प्रधान संविधान और विधि सम्मत शासन के अनुरूप बनाया जा सके जो हमारे राजनैतिक समाज की एकता तथा अखंडता बनाए रखने वाली शक्ति है। यहाँ तक कि ब्रिटेन में भी थल सेनाओं में विश्वास पैदा करने के लिए कोर्ट्स मार्शल के निर्णय की न्यायिक पुनरीक्षा करने संबंधी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया है। ब्रिटेन में कोर्ट मार्शल (अपील) अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया गया है और

> इसमें कोर्ट मार्शल (अपील) अधिनियम, 1966 द्वारा व्यापक संशोधन किए गए हैं। केवल एक अपील करने की व्यवस्था कर देने मात्र से लोग आश्वस्त नही हो सकते, अपीलीय न्यायालय के अधिकारियों को विश्वास की प्रेरणा जगानी चाहिए। कोर्ट मार्शल अपीलीय न्यायालय, अपील न्यायालय के पदेन तथा सामान्य न्यायाधीशों, ''क्वीन'' की न्यायपीठ डिवीजन के लार्ड चीफ जस्टिस द्वारा मास्टर रोल के परामर्श के पश्चात् मनोनीत न्यायाधीश, स्काटलैण्ड में जस्टिसियरी कमीशनर के ऐसे लार्ड्स जो लॉर्ड चीफ जस्टिस सामान्यतया मनोनीत करे, उत्तरी आयरलैण्ड के उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीश जो उत्तरी आयरलैण्ड के लार्ड चीफ जस्टिस मनोनीत करे और विधिक अनुभव प्राप्त ऐसे व्यक्ति जिन्हें लार्ड चांसलर नियुक्त करे, को सम्मिलित करके गठित होगा। कोर्ट मार्शल अपीलीय न्यायालय को वह शक्ति प्राप्त है जिसके आधार पर वह किसी ऐसे प्रश्न को निश्चित कर सकता है जिसे न्याय के हित में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना आवश्यक हो और ऐसे मामले में जहां नये साक्ष्य की दृष्टि से दोषसिद्धी को अभिखंडित कर दिया गया हो वहां मामले की नये सिरे से सुनवाई प्राधिकृत कर सकता है। न्यायालय को अन्य बातों के साथ–साथ दस्तावेज प्रस्तुत करने का आदेश देने अथवा कार्यवाहियों से संबंधित प्रदर्श साक्ष्यों की उपस्थिति के लिए आदेश देने, साक्ष्य प्राप्त करने, कोर्ट मार्शल के सदस्यों अथवा न्यायाधीश अधिवक्ता के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों से रिपोर्ट आदि प्राप्त करने, किसी प्रश्न को जांच के लिये विशिष्ट आयुक्त के लिए निर्दिष्ट करने का आदेश देने और विशिष्ट ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को मूल्यांकक के रूप में नियुक्त करने की शक्तियां भी प्राप्त हैं। (हैल्सबरीज लॉज ऑफ इंग्लैण्ड, iv संस्करण, पैदा 954–55, पृष्ठ 458–459)। यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय को किसी प्रक्रियात्मक झंझट से मुक्त पूर्व न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति प्राप्त है। **अमेरीका के संबंध में ध्यान देने पर** यूनीफार्म कोड ऑफ मिलिट्री जस्टिस एक्ट, 1950 का निर्देश अनुदेशात्मक होगा। सैन्य मामलों की अपीलों के लिए एक न्यायालय स्थापित करने का उपबंध किया गया है। इस अधिनियम में बहुत से प्रक्रियात्मक सुधार अन्तर्विष्ट हैं और ऐसे सम्यक् प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों की व्यवस्था की गयी है जिनकी पहले सिविल न्यायालयों में गारंटी नहीं दी गयी थी। एक उदाहरण के रूप में **गाइडियन** बनाम **विनराइट** [(372 यू॰ एस॰ 355 (1963)] मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के तेरह वर्ष पूर्व कोर्ट मार्शल के सामान्य मामलों में विधिक अर्हताप्राप्त अधिवक्ता का अधिकार संविधिक बनाया गया था। 1960 तथा 1968 के बीच जब प्रशासनिक न्याय अधिनियम 1968 पुर:स्थापित किया गया, सिविल न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रशासन में बहुत से विकास किए गये परन्तु ये सैन्य न्यायालयों की कार्यवाहियों में परिलक्षित नहीं होते थे। इन दोषों को दूर करने के लिए कांग्रेस ने सैन्य न्याय अधिनियम 1968 अधिनियमित किया जिसके मूल तत्व इस प्रकार हैं--(1) किसी भी विशेष कोर्ट मार्शल के समक्ष किसी अभियुक्त के लिए विधिक अर्हता प्राप्त अधिवक्ता को अधिकार की गारंटी दी गयी। (2) कोई सैन्य न्यायाधीश कतिपय परिस्थितियों में अकेला ही मामले की सुनवाई कर सकता था और ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त को सैन्य न्यायाधीश के बारे में जानकारी हो जाने के पश्चात् यह विकल्प प्रदान किया गया था कि वह उसी एकमात्र जज से मामले की सुनवाई का अनुरोध कर सकता था। सैन्य न्याय आदि के बारे में कमांड हस्तक्षेप पर प्रतिबंध लगाया गया। **हमारी पद्धति अभी तक प्राचीन पद्धति है।** देश पर्यन्त चल रहे परिवर्तन ने सेना की सीमित और अनुल्लंघनीय सीमाओं में प्रवेश नहीं किया है। यदि सिविल न्यायालयों मे सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए अपितु न्याय किया गया दिखना भी चाहिए तथा यह सिद्धान्त कोर्ट मार्शल के मामलों में भी पूर्ण उत्साह के साथ अपनाया जाना चाहिए जहां न्यायाधीश और अभियुक्त दोनों एक ही परिवेश में होते हैं, उनका एक जैसा मानसिक अनुशासन होता है और एक सुदृढ़ पद सोपान संबंधी अधीनस्थता होती है। ऐसी परिस्थितियों में पक्षपातपूर्ण भावना दूर नहीं की जा सकती।''

(बल दिया गया)

उच्चतम न्यायालय ने निष्कर्ष स्वरूप निम्नलिखित टिप्पणियां कीं :--

> **''अत: हम आशा और विश्वास करते हैं कि सभी अंग्रेजी भावी लोकतंत्र में आये परिवर्तन हमारी संसद को भी परिवर्तित मूल्य प्रणाली के बारे में जागरूक बनाएंगे। इस संबंध में हम सरकार का ध्यान इस प्रत्यक्ष विसंगति की ओर दिलाना चाहेंगे कि कोर्ट मार्शल अपने निष्कर्षों के समर्थन में, मृत्युदण्ड दिये गये मामलों में भी अपने आदेश में संक्षिप्त कारण भी अभिलिखित नहीं करते। यह सुनिश्चित करने के लिए इसका उपचार किया जाना चाहिए कि अनुशासित तथा निष्ठावान भारतीय सेना में ऐसी शिकायत जन्म न ले पाये कि न्याय की स्वच्छ और सारभूत प्रणाली से उन्हें वंचित रखा गया है।''**

3.2 **एस॰ एन॰ मुखर्जी का मामला :** एस॰ एन॰ मुखर्जी बनाम भारत संघ[2] मामले में वर्ष 1990 में उच्चतम न्यायालय की संविधान पी॰ ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के रूप में कारणों को अभिलिखित करने की अनिवार्य वांच्छनीयता पर बल देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि सेना अधिनियम के अधीन चल रही कार्यवाही में इसके प्रति कोई आग्रह नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने कहा कि सेना अधिनियम तथा उसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों में केवल दो परिस्थितियों में, और किसी अन्य परिस्थिति में नहीं, कारण अभिलिखित करने का प्रावधान है। वे दो परिस्थितियां जिनमें कारणों का अभिलिखित करना अपेक्षित है, इस प्रकार है :

(क) जहां कोर्ट मार्शल दया की सिफारिश करता है, और

(ख) जहां संक्षिप्त कोर्ट मार्शल की कार्यवाहियों को अपास्त कर दिया जाता है अथवा दिये गये दण्ड को कम कर दिया जाता है।

न्यायालय ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि--

> ''कोर्ट मार्शल द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों और दण्डादेशों की पुष्टि करने वाले पुष्टिकारक प्राधिकरण द्वारा पारित किसी आदेश तथा परापुष्टिकरण याचिका को खारिज करने वाले केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित आदेश के लिए कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है।''

अध्याय चार

सुसंगत सांविधिक उपबन्ध

4.1 वर्ष 1992 में, संसद ने सेना (संशोधन) अधिनियम, 1992, 1992 का अधिनियम सं. 37, अधिनियमित किया। सेना अधिनियम के बहुत से उपबंधों में संशोधन किये गये परन्तु **पृथीपाल सिंह** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने जो सिफारिशें की थीं उनके अनुसार कोई प्रावधान नहीं किया गया। तथापि, दिनांक 6 दिसम्बर, 1993 के का॰नि॰आ॰ 17ङ के अधीन सेना नियमों के नियम 62 के उपनियम (1) को संशोधित किया गया जिसमें अधिकरण को अपने निर्णय के समर्थन में संक्षिप्त कारण देने के लिए बाध्यकारी बनाया गया। संशोधन इस प्रकार है :--

> "(1) प्रत्येक आरोप पर जिसके लिए अभियुक्त को दोषी पाया जाये निष्कर्ष अभिलिखित किया जायेगा और इन नियमों के प्रावधान के अतिरिक्त "दोषी" अथवा "दोषी नहीं" जैसे निष्कर्ष को अभिलिखित किया जायेगा। प्रत्येक आरोप पर निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात्, न्यायालय उनके समर्थन में संक्षिप्त कारण देगा। न्यायाधीश अधिवक्ता या, यदि कोई न हो, पीठासीन अधिकारी कार्यवाहियों में से ऐसे संक्षिप्त कारण अभिलिखित करेगा अथवा करायेगा। उपर्युक्त अभिलेख पर पीठासीन अधिकारी तथा न्यायाधीश अधिवक्ता, यदि कोई हो, द्वारा हस्ताक्षर किये जाएंगे और दिनांक अंकित किया जायेगा।"

4.2 नौसेना तथा वायुसेना अधिनियम में कोर्ट मार्शल के बारे में इस प्रकार के संशोधन नहीं किये गये।

4.3 **विषय को स्वयंमेव अपनाने की आवश्यकता :** क्योंकि **पृथी पाल सिंह** के मामले में, जिसमें ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे अन्य देशों में हुए विकासों को ध्यान में रखा गया है, उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई सिफारिशों का जहां तक संबंध है संसद द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की गई अत: विधि आयोग ने स्वयं ही इस विषय से संबंधित वर्तमान नियमों की पुनरीक्षा करना उपयुक्त समझा है।

4.4 **सेना अधिनियम, 1950 का संक्षिप्त सर्वेक्षण :** वर्ष 1950 में अधिनियमित किये गये सेना अधिनियम में 16 अध्याय हैं। छ: अध्यायों में विभिन्न अपराधों का उल्लेख है और अध्याय 7 में दण्ड का। तथापि, gekjk lea{kdsy v/;k; X, XI, XII में अन्तर्विष्ट उपबंधों से है जो क्रमश: कोर्ट मार्शल, कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया तथा पुष्टिकरण और पुनरीक्षण के बारे में है। अध्याय दस में धारा 108 से धारा 127 तक अन्तर्विष्ट की गई हैं। धारा 108 में चार प्रकार के कोर्ट्स मार्शलों का प्रावधान है, अर्थात जनरल कोर्ट मार्शल, डिस्ट्रिक्टस कोर्ट मार्शल, समरी जनरल कोर्ट्स मार्शल तथा समरी कोर्ट्स मार्शल। अध्याय के अन्य प्रावधानों में विभिन्न प्रकार के कोर्ट्स मार्शल बुलाने, उनकी शक्तियाँ तथा अन्य प्रकीर्ण मामलों का विवरण है।

4.4.1 अध्याय ग्यारह में धारा 128 से 152 तक समाविष्ट है। जैसा कि अध्याय का शीर्षक दर्शाता है इन धाराओं में कोर्ट मार्शल द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया विहित की गई है।

4.4.2 अध्याय बारह जिसमें धारा 153 से 165 तक समाविष्ट है, कोर्ट मार्शल के आदेशों की पुष्टि तथा उनके पुनरीक्षण का प्रावधान है। धारा 153 में कहा गया है कि किसी **जनरल, डिस्ट्रीक्ट** अथवा **समरी जनरल कोर्ट मार्शल** का कोई निष्कर्ष अथवा दण्ड तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि अधिनियम के उपबंध के अनुसार उसकी पुष्टी नही कर दी जाती। तथापि, समरी कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष तथा दण्ड के लिए किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है और इसे धारा 161 की व्यवस्था के अनुसार सीधे कार्यान्वित किया जा सकता है। यह ठीक है कि इसी धारा में उक्त नियम के लिए एक अपवाद का उपबंध भी है अर्थात्, यदि सुनवाई करने वाले अधिकारी की सेवा अवधि पांच वर्ष से कम हो तो वह सक्रिय सेवा के सिवाय किसी दण्ड को क्रियान्वित नहीं कर सकेगा जब तक कि उसे ब्रिगेड से अन्यून ऑफिसर कमांडिंग की स्वीकृति प्राप्त न हो गयी हो। धारा 160 कोर्ट मार्शल द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अथवा दण्ड के पुनरीक्षण का प्रावधान करती है। इसमें कहा गया है कि "कोर्ट मार्शल का कोई निष्कर्ष अथवा दण्ड, जिसकी पुष्टी किया जाना आवश्यक है, पुष्टीकरण अधिकारी के आदेश द्वारा एक बार पुनरीक्षित किया जा सकता है और इस प्रकार के पुष्टीकरण पर न्यायालय यदि पुष्टी करने वाले प्राधिकरण द्वारा इस प्रकार निदेशित किया जाये, अतिरिक्त साक्ष्य ले सकता है।" धारा 163 में यह प्रावधान है कि कोर्ट मार्शल द्वारा जहां दोष के निष्कर्ष की पुष्टी भी कर दी जाती है अथवा जहां ऐसे निष्कर्ष की पुष्टी करना अपेक्षित नहीं है किसी कारण से अवैध अथवा साक्ष्य द्वारा समर्थित नही पाया जाता है, धारा 179 के अधीन दण्ड को कम करने के लिए सक्षम प्राधिकारी एक नया निष्कर्ष प्रतिस्थापित कर सकता है और ऐसे निष्कर्ष में विनिर्दिष्ट अथवा अन्तर्ग्रस्त अपराध के लिए दण्ड पारित कर सकता है। धारा 164 में ऐसे व्यक्तियों के लिए जिनके विरुद्ध कार्ट मार्शल के निष्कर्ष अथावा दण्ड की पुष्टी कर दी गयी है, पुष्टीकरण तथा उपचार के लिए प्रावधान किया गया है। यहां धारा 164 को पूर्ण रूप से उद्धृत करना उपयुक्त होगा :--

"164. **कोर्ट मार्शल के आदेश, निष्कर्ष अथवा दण्ड के विरुद्ध उपचार :** (1) इस अधिनियम के अध्यधीन कोई भी व्यक्ति जिसे किसी कोर्ट मार्शल द्वारा पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई शिकायत है, ऐसे कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष अथवा दण्ड की पुष्टी करने के लिए शक्ति प्राप्त अधिकारी अथवा प्राधिकारी को याचिका प्रस्तुत कर सकता है और पुष्टीकरण प्राधिकारी ऐसी कार्यवाही कर सकता है जो पारित आदेश के सही होने, उसकी वैधता अथवा औचित्य के बारे में अथवा जिस कार्यवाही से आदेश संबंधित है उसके नियमित क्रम के बारे में अपने को संतुष्ट करने के लिए उचित समझें।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई भी व्यक्ति जो कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष अथवा दण्ड से अपने को पीड़ित समझता है, केन्द्रीय सरकार, सेना प्रमुख अथवा ऐसे निष्कर्ष अथवा दण्ड की पुष्टि करने वाले अधिकारी से श्रेष्ठ किसी विहित अधिकारी को याचिका प्रस्तुत कर सकता है और केन्द्रीय सरकार, सेना प्रमुख अथवा अन्य अधिकारी, यथा स्थिति, उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकते हैं जैसा वे उचित समझें।"

4.4.3 धारा 165 केन्द्रीय सरकार, सेना प्रमुख अथवा किसी विहित अधिकारी को, किसी कोर्ट मार्शल की कार्यवाहियों को इस आधार पर रद्द करने की शक्ति प्रदान करती है कि वे अवैध और अनुचित है।

4.5. **कोर्ट मार्शल के आदेश के विरुद्ध अपील के विद्यमान अधिकार न होना :** इस प्रकार स्पष्ट है कि जनरल कोर्ट्स मार्शल, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट्स मार्शल और समरी कोर्ट्स मार्शल के अन्तिम निष्कर्ष अथवा उसके द्वारा निर्धारित किये गये दण्ड के मामले में अभियुक्त को केवल धारा 164 की उपधारा (2) में उपबंधित केवल एक उपचार उपलब्ध है, जैसा कि एस॰ एन॰ मुखर्जी के मामले मे उच्चतम न्यायालय ने बताया है। (पुष्टीकरण से पूर्व, पुष्टीकरण प्राधिकारी को अभ्यावेदन देने का अवसर कोई उपचार नहीं है अपितु, अन्तिम आदेश पारित होने से पूर्व अभ्यावेदन देने का एक अवसर मात्र है) धारा 164 (2) के अधीन उक्त उपचार का उपयोग, पुष्टीकरण प्राधिकारी द्वारा दण्ड के निष्कर्ष की पुष्टी किये जाने के पश्चात् ही किया जा सकता है; उसके पुष्टीकरण से पूर्व नहीं। कतिपय मामलों में पुनरीक्षण करने की शक्ति तथा निष्कर्ष अथवा दण्ड को बदलने की शक्ति अथवा धारा 160, 163 तथा 165 में उपबंधित कार्यवाहियों को निरस्त करने की शक्ति अभियुक्त व्यक्ति के लिए उपचारात्मक नहीं हैं। अपितु, वास्तव में विभिन्न विशिष्ट प्राधिकारियों की शक्तियाँ हैं। संक्षेप में कोर्ट मार्शल के आदेश के विरुद्ध (अर्थात् जहाँ विधि द्वारा अपेक्षित इसकी पुष्टी कर दी गई है अथवा जहाँ ऐसी पुष्टी अपेक्षित नहीं है, यथा स्थिति) या धारा 164 की उपधारा (2) के अन्तर्गत पारित आदेश, जिससे अभियुक्त पीड़ित है, के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार नहीं है।

4.6 **नौसेना अधिनियम तथा सेना अधिनियम की प्रक्रियाओं में अन्तर :** यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि नौसेना अधिनियम 1957 में उपबंधित प्रक्रिया इस संबंध में सेना अधिनियम में उपबंधित प्रक्रिया से कतिपय दिशाओं में भिन्न है। दोनों के बीच में निम्नलिखित अन्तर है:--

(क) नौसेना अधिनियम में कोर्ट्स मार्शल द्वारा अभिलिखित दण्ड अथवा आदेश की पुष्टी अपेक्षित नहीं है जबकि सेना अधिनियम में यह अपेक्षित है। एक मात्र अपवाद यह है कि जहाँ किसी अधिकारी को कारावास का दण्ड दिया जाता है--जिसमें कोर्ट मार्शल द्वारा उद्घोषित दण्ड को तब तक कार्यान्वित नहीं किया जा सकता जब तक कि नौसेना प्रमुख को इसकी सूचना न दे दी गई हो जिसे उस पर ऐसे आदेश पारित करने का अधिकार है जो वह उचित समझे। दण्ड अथवा आदेश ऐसे निर्देशों के अधीन जो वह दे, कार्यान्वित किया जाएगा। दण्ड को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने का दायित्व संयोजन प्राधिकारी पर है (नौसेना विनियमों भाग-2 का विनियम 194)

(ख) नौसेना अधिनियम में कोर्ट्स मार्शल द्वारा की गई सुनवाई की कार्यवाहियों का न्यायिक पुनरीक्षण करने का प्रावधान है। न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति न्यायाधीश महाधिवक्ता में निहित है जिसका उपयोग स्वयंमेव अथवा पीड़ित व्यक्ति द्वारा आवेदन करने पर किया जा सकता है। न्यायाधीश महाधिवक्ता, यदि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए आवश्यक समझता है, अभियुक्त के पक्ष की सुनवाई स्वयं अभियुक्त पर अथवा उसके एडवोकेट के माध्यम से अथवा भारतीय नौसेना के किसी अधिकारी के माध्यम से की जा सकती है। तत्पश्चात् न्यायाधीश महाधिवक्ता नौसेना प्रमुख को अपनी रिपोर्ट उस पर ऐसे आदेश देने के लिए जो वह उचित समझे, भेजता है। (धारा 160) नौसेना अधिनियम की धारा 161 में यह उपबंध है कि मृत्युदण्ड के सभी मामलों में तथा उन सभी मामलों में जिनमें राष्ट्रपति द्वारा कोर्ट् मार्शल को आदेश दिया गया है, नौसेना प्रमुख मामले को अपनी सिफारिशों के साथ केन्द्रीय सरकार को भेजेगा। अन्य मामलों में यह उसके स्वविवेकाधिकार पर निर्भर करता है कि वह ऐसी रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार को भेजे अथवा नहीं।

(ग) धारा 161 की उपधारा (2) के अनुसार, कोर्ट मार्शल द्वारा मुक्त करने के आदेश में न्यायाधीश महाधिवक्ता द्वारा अथवा नौसेना प्रमुख द्वारा न तो कोई हस्तक्षेप किया जा सकता है और न ही उसे रद्द किया जा सकता है।

(ध) धारा 162 में यह प्रावधान किया गया है कि कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष अथवा दण्ड से पीड़ित व्यक्ति, केन्द्रीय सरकार या नौसेना प्रमुख को याचिका देने के लिए स्वतन्त्र है। यह उपचार धारा 160 में उपबंधित न्यायाधीश महाधिवक्ता के समक्ष आवेदन करने के उपचार के अतिरिक्त है। धारा 163 में यह उपबंध किया गया है कि ऐसी याचिका दिये जाने पर केन्द्रीय सरकार या नौसेना प्रमुख उसमें विनिर्दिष्ट आदेशों में से, दण्ड में वृद्धि करने के आदेश के अतिरिक्त, कोई भी आदेश दे सकेंगे।

अध्याय पाँच

उद्देश्य किस प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं

5.1 **कोर्ट मार्शल द्वारा पारित अन्तिम आदेशों के विरुद्ध अपीलों के बारे में निष्कर्ष :** विधि आयोग का मत है कि अध्याय एक में जिन उद्देश्यों के बारे में चर्चा की गई है उनको प्राप्त करने के लिए--

> कोर्ट मार्शल द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपील ग्रहण किए जाने के लिए एक उपयुक्त अपीलीय फोरम की व्यवस्था करना अनिवार्य है। जैसाकि यहाँ ऊपर बताया गया है, जहाँ सेना तथा वायुसेना अधिनियमों में (संक्षिप्त कोर्ट मार्शल के सिवाय) कोर्ट मार्शल द्वारा दिए गए दण्ड अथवा निर्णय की पुष्टी किए जाने की व्यवस्था है वहाँ नौसेना अधिनियम में ऐसी किसी पुष्टी का प्रावधान नहीं है। इस संबंध में, हमारा यह भी मत है कि प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को सेना अधिनियम की धारा 164 की उपधारा (2) में विहित प्रक्रिया तथा इसी प्रयोजन के लिए वायुसेना अधिनियम, 1950 के तत्समान प्रावधान अपनाने के लिए विवश करना आवश्यक नहीं है। कोर्ट मार्शल के अन्तिम आदेश (दण्ड अथवा निष्कर्ष) के विरुद्ध अपील करने का प्रावधान उपलब्ध होना चाहिए। वास्तव में यहाँ जिस अधिकरण का प्रस्ताव किया गया है उसको देखते हुए धारा 164 की उपधारा (2) तथा वायुसेना अधिनियम के तत्समान उपबंध को निकाल दिया जाना चाहिए। यहाँ तक कि नौसेना अधिनियम में न्यायाधीश महाधिवक्ता न्यायिक पुनरीक्षा से संबंधित प्रावधान को भी निकाला जा सकता है।

5.1.1 हमारे विचार में अपीलीय अधिकरण ब्रिटेन की व्यवस्था की भाँति पूर्णतया सिविल अपीलीय अधिकरण नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन बनाए रखने में सहायता नहीं मिलेगी। हमारे विचार में सिविल न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक अधिकरण बनाना बहुत उपयुक्त होगा जिसके अन्य सदस्य सशस्त्र सेनाओं के सेवानिवृत सदस्यों से तथा उन सदस्यों के बीच से लिए जायेंगे जिन्होंने न्यायाधीश महाधिवक्ता के रूप में तथा इस विभाग में कार्य किया है। संक्षेप में, यह अधिकरण तीन सदस्यीय होगा जिसमें (1) उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश अधिकरण का चेयरमैन होगा जिसका कार्यकाल चार वर्ष होगा। (2) सेना में मेजर जनरल अथवा इससे ऊपर के पद का सेवानिवृत पदाधिकारी अथवा एयरवाइस मार्शल के पद का वायुसेना का अधिकारी अथवा रीयर एडमिरल के पद का नौसेना का सेवानिवृत अधिकारी, और (3) सेना/वायुसेना/नौसेना का सेवानिवृत न्यायाधीश महाधिवक्ता सदस्य होंगे। प्रेसीडेन्ट तथा सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष होगा। तथापि, यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कोई अपील दायर की जाती है जो ऐसे नियुक्त सदस्य से उपर्युक्त श्रेणी (2) में अपने सेवानिवृत होने के समय ऊँचा पद धारण किए हो तब अधिकरण का प्रेसीडेन्ट केन्द्रीय सरकार को ऐसे मामले में सदस्य के रूप में श्रेणी (2) के सदस्य के रूप में एक ऐसे सेवानिवृत अधिकारी की नियुक्ति करने के लिए लिखेगा जो अपील दायर करने वाले अधिकारी के पद से अन्यून पद धारक होगा।

सदस्यों की सेवा-शर्तें ऐसी होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जायें।

5.1.2 अधिकरण में गणपूर्ति तो होगी परन्तु प्रेसीडेन्ट की भागीदारी के बिना अधिकरण का कोई निर्णय नहीं लिया जाएगा।

5.1.3 अधिकरण, सेना, नौसेना तथा वायुसेना के लिए सामान्य होगा। अधिकरण का मुख्यालय दिल्ली स्थित होगा, परन्तु अधिकरण अपनी बैठकें सभी पक्षों की सुविधा के हित में अन्य स्थानों पर भी कर सकेगा।

5.1.4 अधिकरण के निर्णय से विधिक अपील सीधे उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी। यह कोई नई बात नहीं है क्योंकि अन्य अधिनियमितियों में भी इस प्रकार की सीधी अपीलों का प्रावधान पहले से ही उपलब्ध है। उदाहरण के लिए, सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130-ङ और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 30-ठ और इसी प्रयोजन से उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1966 की धारा 23 में ऐसी व्यवस्था है। उच्चतम न्यायालय में प्रस्तावित सांविधिक अपील को ध्यान में रखते हुए, यह आशा की जाती है कि कोई भी उच्च न्यायालय अपीलीय अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कोई रिट याचिका ग्रहण नहीं करेगा। यदि ऐसी अपील का प्रावधान किया जाता है तो संविधान के अनुच्छेद 136 के खण्ड (2) को निकालना उपयुक्त होगा जिसमें यह उपबंधित है कि उक्त अनुच्छेद खण्ड (1) द्वारा उच्चतम न्यायालय को अपील करने की विशेष अनुमति देने की प्रदत्त शक्ति सशस्त्र सेनाओं से संबंधित किसी विधि के अधीन अथवा उसके द्वारा गठित किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा दिए गए किसी निर्णय, विनिश्चय, दण्ड अथवा पारित आदेश पर लागू नहीं होगी।

अध्याय छः

अन्य निष्कर्ष

6.1 **सशस्त्र सेनाओं के अधिकारियों के विचारों का परीक्षण :** इस रिपोर्ट को अन्तिम रूप देने से पूर्व, विधि आयोग ने तीनों सशस्त्र सेनाओं के सेवानिवृत तथा सेवारत अधिकारियों के साथ विस्तार से विचार विमर्श किया था। उन्होंने न केवल अध्याय-पाँच में अन्तर्विष्ट प्रस्तावों का समर्थन किया अपितु यह अनुरोध भी किया कि इस प्रकार गठित अधिकरण को केवल कोर्ट मार्शल द्वारा पारित आदेशों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु इन सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों की सेवा शर्तों से संबंधित विवादों के बारे में उसकी अधिकारिता होनी चाहिए। उन्होंने इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया कि सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों द्वारा प्रति वर्ष अपनी वरिष्ठता, पदोन्नति, पेंशन तथा अन्य सेवा शर्तों सहित सेवा संबंधी मामलों के बारे में भारत के विभिन्न न्यायालयों में सैकड़ों रिट याचिकायें दायर की जाती हैं। उन्होंने आग्रह किया कि बहुत से उच्च न्यायालयों में ऐसे मामले एक न्यायाधीश द्वारा ही ग्रहण और निपटाये जाते हैं जिसके आदेश के विरुद्ध रिट अपील/विशेष अपील उसी उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के समक्ष दायर की जाती है और खण्डपीठ के आदेश के विरुद्ध न्यायालय की अनुमति से संविधान के अनुच्छेद 136(1) के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की जाती है। उन्होंने बताया कि सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन के हित में तथा सेवा शर्तों से संबंधित शिकायतों के शीघ्र समाधान के लिए एक विशेष अधिकरण होना चाहिए जिसके आदेशों के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके। उन्होंने बताया कि इस तथ्य के अतिरिक्त कि रिट संबंधी उपचार एक सीमित उपचार है जहाँ न्यायालय कतिपय सीमित आधारों पर ही हस्तक्षेप कर सकते हैं, वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है। उन्होंने कहा कि सेवाशर्तों संबंधी विवादों का न्याय निर्णयन करते समय भी, न्याय निर्णयन प्राधिकारी को किसी उपयुक्त निर्णय पर पहुँचने में सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन और उनकी कार्यशैली के प्रति सजग रहना होता है।

6.2.1 यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त अनुरोध प्रत्यक्षतः सशस्त्र सेनाओं के लिए एक सेवा अधिकरण बनाने से संबंधित है जो अधिकांशतः केवल **इस तथ्य के सिवाय** कि प्रस्ताव में सीधे उच्चतम न्यायालय में विधिक अपील दायर करने का प्रस्ताव किया गया है, प्रशासनिक अधिकरण, अधिनियम 1985 के अधीन गठित प्रशासनिक अधिकरण की पद्धति पर गठित होगा। यदि ऐसा है तो, इस संबंध में इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि ऐसा अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 323-क की सीमाओं के अन्तर्गत रहना चाहिए। हमें एल० **चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ** मामले में उच्चतम न्यायालय के सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय, तथा जिस पृष्टभूमि में वह निर्णय दिया गया उस को भी ध्यान में रखना चाहिए। उक्त निर्णय द्वारा विकसित तंत्र को भी ध्यान में रखना होगा जिसके अधीन सेवा संबंधी सभी विवाद प्रथमतः प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष उठाने का निदेश दिया गया है जिसके निर्णय के विरुद्ध इस शर्त के अध्यधीन कि न्यायिक पुनरीक्षण के लिए इस प्रकार की याचिका केवल न्याय खण्डपीठ द्वारा ही सुनी जायेगी, अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनरीक्षा का उपचार उपलब्ध कराया गया है। इस निर्णय के पीछे **अनुच्छेद 136 के अधीन** उच्चतम न्यायालय में, प्रशासनिक अधिकरण के निर्णयों--वास्तव में एकल प्रशासनिक सदस्य द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध भी दायर की जाने वाली अपीलों की बढ़ती हुई संख्या को रोकना था। तथापि, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम में केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम/सीमाशुल्क अधिनियम (कतिपय मामलों में) और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में किये गये प्रावधानों के अनुसार सांविधिक अपील का उपबंध नही है और इसलिए प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपील अनुच्छेद 136 के अधीन दायर की जानी थी तथा की जा रही थी। न्यायालय की इच्छा को भी ध्यान में रखना होगा। यह ठीक है कि यदि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम में, प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान किया गया होता तो **एल० चन्द्रकुमार** के मामले में दिये गये निर्णय से उपर्युक्त वैकल्पिक व्यवस्था न की जा सकती थी। उपर्युक्त सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए हमने सशस्त्र सेना के सेवानिवृत तथा सेवारत सदस्यों के उनके सेवा संबंधी विवादों के न्यायनिर्णय के लिए एक फोरम गठित करने के अनुरोध पर निष्पक्ष रूप में विचार किया।

6.2.2 **बोंकिया उर्फ भारत शिवाजी माने तथा अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] मामले में ''टाडा'' की धारा 19 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया :

> ''20 · · · · सुविज्ञ अधिवक्ता ने आग्रह किया कि अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय में पहली सुनवाई के अवसर से वंचित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उच्च न्यायालय में उनके असफल रहने की स्थिति में उन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में जाने का अवसर बना रहेगा। यह तर्क दोषपूर्ण है और टाडा की धारा 19 के स्पष्ट उपबंधों के विपरीत है। टाडा की धारा 19(1)(2) का पाठ इस प्रकार है'' :
>
> > ''19 अपील--(1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी किसी निर्दिष्ट न्यायालय के किसी निर्णय, दण्ड अथवा आदेश, जो अन्तर्वर्ती आदेश न हो, के विरुद्ध तथ्यों तथा विधि दोनों प्रकार के मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा।
> >
> > (2) उपर्युक्त के अतिरिक्त किसी निर्दिष्ट न्यायालय के अन्तर्वर्ती आदेश सहित, किसी निर्णय, दण्ड अथवा आदेश के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील अथवा पुनरीक्षण याचिका दायर नहीं की जायेगी।''

"21. उपर्युक्त धारा के अनुशीलन से पता चलता है कि किसी निर्दिष्ट न्यायालय के निर्णय, दण्ड अथवा आदेश (अन्तर्वर्ती आदेश के सिवाय) के विरुद्ध कोई अपील तथ्यों तथा विधि संबंधी मामलों पर उच्चतम न्यायालय में ही दायर की जा सकेगी और किसी अन्य न्यायालय में ऐसी कोई अपील अथवा पुनरीक्षण याचिका दायर नहीं की जाएगी। इस स्पष्ट उपबंध को देखते हुए यह आग्रह करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि टाडा की धारा 3 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए अपीलकर्ता को हमारे द्वारा मुक्त कर दिये जाने के कारण अपील उच्च न्यायालय को अन्तरित की जाये। ऐसे मामले में जहाँ निर्दिष्ट न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि टाडा के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है तो वह न्यायालय टाडा की धारा 18 के अधीन मामले को नियमित दाण्डिक न्यायालय के लिए अन्तरित कर सकता है परन्तु एक बार आरोप निर्धारित कर दिये जाने पर और निर्दिष्ट न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई किये जाने पर दोषसिद्धि, दण्ड अथवा मुक्ति के लिए अपील केवल उच्चतम न्यायालय में ही की जा सकेगी, किसी अन्य न्यायालय में नहीं।"

6-2-3 **एस० एस० जैन समिति बनाम मेनेजमैन्ट कमेटी आर० जे० आई० कॉलिज आगरा मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की गयी :**

"8 · · · · रिट अधिकारिता का तात्पर्य पक्षकारों के बीच न्याय करना है जहाँ ये किसी अन्य फोरम द्वारा न किया गया हो।"

6.2.4 किसी पीड़ित पक्ष को प्रस्तावित अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका दायर करने का अधिकार नहीं होगा क्योंकि यह निर्धारित विधि है कि जहाँ अपील करने का पर्याप्त उपचार उपलब्ध है वहाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर करने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार जब किसी पीड़ित व्यक्ति को प्रस्तावित अधिकरण के अन्तिम निर्णय अथवा आदेश के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान किया गया है तब वह प्रस्तावित अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका दायर करने का अधिकारी नहीं होगा।

6.2.5 उपर्युक्त विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में हमारे निष्कर्ष इस प्रकार हैं।

6.3 सेवा संबंधी विवादों के न्यायनिर्णयन संबंधी निष्कर्ष यहाँ नीचे, हम निम्नलिखित सिफारिश करते है :

6.3.1 सेना, नौसेना तथा वायुसेना में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों के संबंध में विवादों तथा शिकायतों के न्यायनिर्णय के लिए एक अधिकरण गठित करने का उपबंध करने के लिए सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों में संशोधन किया जाना चाहिए। संशोधन में ऐसे अधिकरण के अन्तिम निर्णयों तथा आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में विधिक अपील दायर करने का उपबंध करने के लिए भी संशोधन किया जाना चाहिए। अन्तर्वर्ती आदेशों के विरुद्ध अपील करने का स्पष्ट रूप से निषेध किया जाना चाहिए। यह आशा की जाती है कि उच्च न्यायालय सशस्त्र सेनाओं में लोकहित में अनुशासन से संबंधित ऐसे उपबंध के पीछे निहित विधायी आशय पर सम्यक रूप से ध्यान देंगे। इस संबंध में **मफतलाल इन्डस्ट्रीज लि.** बनाम **भारत संघ**" मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पैरा 108 (X) की टिप्पणियों का उल्लेख किया जा सकता है :

"· · · · · जहाँ तक संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का संबंध है, इस अधिनियम के उपबंधों से वह निष्प्रभावी है। इस पर भी उक्त अनुच्छेदों के अधीन अपनी अधिकारिता का उपयोग करते हुए न्यायालय अधिनियम के उपबंधों द्वारा स्पष्ट किये गये विधायी आशय को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा · · · · · इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 226 के अधीन दी गई शक्ति का प्रयोग विधि की सत्ता को प्रभावी रखने के लिए किया जायेगा उसे समाप्त करने के लिए नही। उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग में कार्य करते समय भी उच्च न्यायालय न तो विधि की उपेक्षा कर सकता है और न ही इसका अतिक्रमण। अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति की अवधारणा विधि के उद्देश्यों की सेवा के लिए है उनका उल्लंघन या अतिक्रमण करने के लिए नहीं।

6.3.2 ऐसा प्रावधान करना भी उपयुक्त होगा कि सेवा संबंधी प्रत्येक मामला अनिवार्यत: दो सदस्यीय पीठ द्वारा निर्णीत किया जाना चाहिए जिनमें से एक न्यायिक सदस्य होगा। पीठ के सदस्यों के बीच मतभेद की स्थिति में मामले को तीन सदस्यीय पीठ को निर्दिष्ट किया जाएगा जिनमें से एक सदस्य न्यायिक सदस्य होगा।

ऐसी परिस्थिति में उच्चतम न्यायालय को मुख्यतया इस आधार पर कि सशस्त्र सेनाओं में सेवा संबंधी विवादों के शीघ्र निपटारे की आवश्यकता तथा सेनाओं में अनुशासन के हित में इस प्रकार का उपाय न्यायोचित होगा, इस प्रकार की सीधी अपील करने की वांछनीयता से सहमत कराना सुगम होगा। जहाँ लोक सेवा में अनुशासनहीनता अवांछनीय है और सेवा संबंधी प्रत्येक विवाद पर शीघ्र निर्णय किया जाना चाहिए, सशस्त्र सेनाओं के मामले में यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि सशस्त्र सेनाओं को संविधान द्वारा भी एक पृथक वर्ग माना जाता है; अनुच्छेद 33 में यह उपबंध है कि संसद विधि द्वारा यह सुनिश्चित कर सकेगी कि सशस्त्र सेनाओं के लिए कोई मूल अधिकार (भाग तीन) किस सीमा तक लागू होगा। अनुच्छेद 311, खण्ड (2) सहित, जिसमें सेवा के सदस्यों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सुरक्षोपाय अन्तर्विष्ट हैं--रक्षा सेनाओं के लिए लागू नहीं किया गया है। यह अनुच्छेद केवल सिविल सेवाओं के लिए लागू होता है।

इस प्रकार बनाया गया अधिकरण सभी तीनों सेनाओं के लिए सामान्य होगा। इस अधिकरण की दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई और कलकत्ता स्थित चार पीठ होंगी और दिल्ली पीठ मुख्य पीठ होगी। (इस विचार को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के व्यवस्था संबंधी प्रावधानों को अपनाया जा सकता है) इस प्रकार का उपाय, ऐसे विवादों के संतोषप्रद तथा शीघ्र न्याय निर्णय की दिशा में नि:संदेह सहायक सिद्ध होगा परन्तु यह सेवा अधिकरण इस रिपोर्ट

के अध्याय पाँच में सिफारिश किये गये अपीलीय अधिकरण से अलग तथा अतिरिक्त अधिकरण होगा।

6.3.3. यदि ऐसा अधिकरण बनाया जाता है तो संसद अन्य अर्धसैनिक सेवाओं को भी इस अधिकरण की अधिकारिता के अधीन लाने पर विचार कर सकती है।

6.4 उपर्युक्त पद्धति पर सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों में संशोधन किये जाने तक, उच्च न्यायालयों में याचिकाओं के शीघ्र निपटारे के लिए उपयुक्त होगा कि केन्द्रीय सरकार देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के सभी मुख्य न्यायाधीशों से अपने-अपने उच्च न्यायालय में इस आशय का संशोधन करने का अनुरोध करे कि सेना, नौसेना तथा वायुसेना से संबंधित सभी सेवा विवाद उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा ग्रहण और न्यायनिर्णीत किये जाएँगे और यह कि ऐसे विवादों को अन्य मामलों की तुलना में यथा संभव प्राथमिकता दी जायेगी। ऐसे मामले में उच्च न्यायालय में एकस्तरीय वाद चलेगा जिसके पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी। इस सिफारिश को इसी रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

अध्याय सात

सिफारिशें

7.1 विधि आयोग सारांश रूप में निम्नलिखित सिफारिश करता है :--

(क) सेना अधिनियम, 1950 में, सशस्त्र सेना अपीलीय अधिकरण गठित करने के लिए उपबंध करने हेतु संशोधन किया जाना चाहिए जो सेना अधिनियम के अधीन कोर्ट मार्शल के दण्ड/निष्कर्ष/आदेश के विरुद्ध अपील ग्रहण करेगा। अपील कोर्ट मार्शल के अन्तिम आदेशों के विरुद्ध दायर की जा सकेगी। यह संबंधित व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करेगा कि वह कोर्ट मार्शल के अन्तिम आदेश/निष्कर्ष अथवा दण्ड के विरुद्ध या तो सीधे अधिकरण में अपील दायर करे अथवा पहली बार धारा 164 की उपधारा (2) के अधीन उपचार को अपनाये और तत्पश्चात् अपीलीय अधिकरण में जाये। इस प्रकार का निर्णय किया जाना पीड़ित व्यक्ति पर छोड़ दिया जाना चाहिए। वास्तव में सेना अधिनियम की धारा 164 की उपधारा (2) तथा वायुसेना अधिनियम के तत्समान उपबंध को निकाल देना उपयुक्त होगा। इसी प्रकार न्यायाधीश पुनरीक्षा से संबंधित नौसेना अधिनियम के उपबंधों को भी निकाल दिय जाना चाहिए।

(उपर्युक्त अध्याय-पाँच का पैरा 5.1)

(ख) ऐसा अपीलीय अधिकरण : (1) उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश जो अधिकरण का पीठासीन अधिकारी (प्रेसीडेन्ट) होगा (2) सेना में मेजर जनरल अथवा इससे ऊपर के पद का सेवानिवृत पदाधिकारी अथवा एयरवाइस मार्शल के पद का वायुसेना का अधिकारी अथवा रीयर एडमिरल के पद का नौसेना का सेवानिवृत अधिकारी, और (3) सेना/वायुसेना/नौसेना का सेवानिवृत न्यायाधीश महाधिवक्ता सदस्य होंगे, को सम्मिलित करके गठित होगा। प्रेसीडेन्ट तथा सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष होगा। तथापि, यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कोई अपील दायर की जाती है जो ऐसे नियमित सदस्य से उपर्युक्त श्रेणी (2) में अपने सेवानिवृत होने के समय ऊँचा पद धारण किए हो तब अधिकरण का प्रेसीडेन्ट केन्द्रीय सरकार को ऐसे मामले में सदस्य के रूप में श्रेणी (2) के सदस्य के रूप में एक ऐसे सेवानिवृत अधिकारी की नियुक्ति करने के लिए लिखेगा जो अपील दायर करने वाले अधिकारी के पद से अन्यून पद धारक होगा। सदस्यों की सेवा-शर्तें ऐसी होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं।

(उपर्युक्त अध्याय पाँच का पैरा 5.1.1)

(ग) अधिकरण में गणपूर्ति दो होगी, परन्तु प्रेसीडेन्ट की भागीदारी के बिना अधिकरण का कोई निर्णय नही लिया जाएगा।

(उपर्युक्त अध्याय पाँच का पैरा 5.1.2)

(घ) अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जायेगी और ऐसी अपील, यदि कोई हो, उसमें पारित आदेश के अध्यधीन अधिकरण का निर्णय अन्तिम होगा।

(उपर्युक्त अध्याय पाँच का पैरा 5.1.4)

(ङ) सेना अधिनियम द्वारा बनाये गये अपीलीय अधिकरण को अपनाने के लिए नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों में भी, अपने ऐसे ही प्रयोजनों के लिए उपयुक्त तत्वों के साथ इसी प्रकार संशोधन किये जा सकते हैं।

(उपर्युक्त अध्याय पाँच का पैरा 5.1.3)

7.2 (क) यदि ऐसा पृथक सेवा अधिकरण बना दिया जाता है तो वह तीनों सशस्त्र सेनाओं के सेवा संबंधी विवादों को शीघ्र निपटाने और सेनाओं में बेहतर अनुशासन बनाये रखने में सहायक सिद्ध होगा। सेना, नौसेना तथा वायुसेना में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों के संबंध में विवादों तथा शिकायतों के न्यायनिर्णय के लिए एक अधिकरण गठित करने का उपबंध करने के लिए सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियमों में संशोधन किया जाना चाहिए। संशोधन में ऐसे अधिकरण के अन्तिम निर्णयों तथा आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में विधिक अपील दायर करने का उपबंध करने के लिए भी संशोधन किया जाना चाहिए। अन्तर्वर्ती आदेशों के विरुद्ध अपील करने का स्पष्ट रूप से निषेध किया जाना चाहिए। यह आशा की जाती है कि उच्च न्यायालय सशस्त्र सेनाओं में लोकहित में अनुशासन से संबंधित ऐसे उपबंध के पीछे निहित विधायी आशय पर सम्यक रूप से ध्यान देंगे। इस संबंध में **मफतलाल इन्डस्ट्रीज लि.** बनाम **भारत संघ** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पैरा 108(X) की टिप्पणियों का उल्लेख किया जा सकता है :

" . . . . . जहाँ तक संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का संबंध है, इस अधिनियम के उपबंधों से वह निष्प्रभावी है। इस पर भी उक्त अनुच्छेदों के अधीन अपनी अधिकारिता का उपयोग करते हुए न्यायालय अधिनियम के उपबंधों द्वारा स्पष्ट किये गये विधायी आशय को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा . . . . . इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 226 के अधीन दी गई शक्ति का प्रयोग विधि की सत्ता को प्रभावी रखने के लिए किया जायेगा उसे समाप्त करने के लिए नहीं। उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग में कार्य करते समय भी उच्च न्यायालय न तो विधि की उपेक्षा कर सकता है और न ही इसका अतिक्रमण। अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति की अवधारणा विधि के उद्देश्यों की सेवा के लिए है उनका उल्लंघन या अतिक्रमण करने के लिए नहीं।

ऐसा प्रावधान करना भी उपयुक्त होगा कि सेवा संबंधी प्रत्येक मामला अनिवार्यत: दो सदस्यीय पीठ द्वारा निर्णीत किया जाए जिनमें से एक न्यायिक सदस्य होगा। पीठ के सदस्यों के बीच मतभेद की स्थिति में मामले को तीन सदस्यीय पीठ को निर्दिष्ट किया जाएगा जिनमें से एक सदस्य न्यायिक सदस्य होगा।

ऐसी परिस्थिति में उच्चतम न्यायालय को मुख्यतया इस आधार पर कि सशस्त्र सेनाओं में सेवा संबंधी विवादों के शीघ्र निपटारे की आवश्यकता तथा सेनाओं में अनुशासन के हित में इस प्रकार का उपाय न्यायोचित होगा, इस प्रकार की सीधी अपील करने की वांछनीयता से सहमत कराना सुगम होगा। जहाँ लोक सेवा में अनुशासनहीनता अवांछनीय है और सेवा संबंधी प्रत्येक विवाद पर शीघ्र निर्णय किया जाना चाहिए, सशस्त्र सेनाओं के मामले में यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि सशस्त्र सेनाओं को संविधान द्वारा भी एक पृथक oxZekok tkrk gS अनुच्छेद 33 में यह उपबंध है कि संसद विधि द्वारा यह सुनिश्चित कर सकेगी कि सशस्त्र सेनाओं के लिए कोई मूल अधिकार (भाग-तीन) किस सीमा तक लागू होगा। अनुच्छेद 311, खण्ड (2) सहित, जिसमें सेवा के सदस्यों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सुरक्षोपाय अन्तर्विष्ट हैं--रक्षा सेनाओं के लिए लागू नहीं किया गया है। यह अनुच्छेद केवल सिविल सेवाओं के लिए लागू होता है।

इस प्रकार बनाया गया अधिकरण सभी तीनों सेनाओं के लिए सामान्य होगा। इस अधिकरण की दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई और कलकत्ता स्थित चार पीठ होंगी और दिल्ली पीठ मुख्य पीठ होगी। (इस विचार को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के व्यवस्था संबंधी प्रावधानों को अपनाया जा सकता है) इस प्रकार का उपाय, ऐसे विवादों के संतोषप्रद तथा शीघ्र न्याय निर्णय की दिशा में नि:संदेह सहायक सिद्ध होगा परन्तु यह सेवा अधिकरण इस रिपोर्ट के अध्याय पाँच में सिफारिश किये गये अपीलीय अधिकरण से अलग तथा अतिरिक्त अधिकरण होगा।

(उपर्युक्त अध्याय छ: का पैरा 6.3.1 व 6.3.2)

यदि ऐसा अधिकरण बनाया जाता है तो संसद अन्य अर्धसैनिक सेवाओं को भी इस अधिकरण की अधिकारिता के अधीन लाने पर विचार कर सकती है।

(उपर्युक्त अध्याय छ: का पैरा 6.3.3)

किसी पीड़ित पक्ष को प्रस्तावित अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका दायर करने का अधिकार नहीं होगा क्योंकि यह निर्धारित विधि है कि जहाँ अपील करने का पर्याप्त उपचार उपलब्ध है वहाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर करने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार जब किसी पीड़ित व्यक्ति को प्रस्तावित अधिकरण के अन्तिम निर्णय अथवा आदेश के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान किया गया है तब वह प्रस्तावित अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका दायर करने का अधिकारी नहीं होगा।

(उपर्युक्त अध्याय छ: का पैरा 6.2.4)

(ख) सेना, नौसेना तथा वायुसेना अधिनियम में पैरा 7.2 (क) में प्रस्तावित संशोधन किये जाने तक केन्द्रीय सरकार विभिन्न उच्च न्यायालयों के माननीय मुख्य न्यायाधीशों से अपने अपने न्यायालय के नियमों में इस आशय का संशोधन करने के लिए अनुरोध कर सकती है कि तीनों सेनाओं से संबंधित सभी सेवा विवाद केवल एक खण्ड न्यायपीठ द्वारा सुने जायेंगे और ऐसे विवाद यथा संभव शीघ्र परन्तु छ: महीने से अनधिक अवधि में निपटा दिये जाने चाहिएं।

(उपर्युक्त अध्याय छ: का पैरा 6.4)

ह०
(न्यायमूर्ति बी० पी० जीवनरेड्डी) (सेवानिवृत)
अध्यक्ष

ह०
(न्यायमूर्ति श्रीमती लीला सेठ) (सेवानिवृत)
सदस्य

ह०
(डा० एन० एम० घटाटे)
सदस्य

ह०
(डा० सुभाष सी० जैन)
सदस्य सचिव

दिल्ली : दिनाँक 29 अप्रैल, 1999

टिप्पणियाँ और संदर्भ

अध्याय–एक

1. रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, सेना विधि मेनुअल, खण्ड–1, भाग–1, अध्याय–1, पृष्ठ 1–3 (संस्करण, 1983)

अध्याय तीन

1. लेफ्टि० कर्नल पृथी पाल सिंह बनाम भारत संघ, 1982(3) एस० सी० सी० 140
2. एस० एन० मुखर्जी बनाम भारत संघ, 1990 (4) एस० सी० सी० 594

अध्याय छः

1. एल० चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ, 1997 (3) एस० सी० सी० 261
2. बोंगया उर्फ भारत शिवाजी माने तथा अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1996 एस० सी० सी० 257
3. एस० एस० जैन समिति बनाम मेनेजमैन्ट कमेटी, आर० जे० आई० कॉलिज, आगरा, ए० आई० आर० 1996 एस० सी० 1211
4. मफतलाल इन्डस्ट्रीज लि० बनाम भारत संघ (1997) 5 एस० सी० सी० 536, पृष्ठ 635

अध्याय सात

1. मफतलाल इन्डस्ट्रीज लि० बनाम भारत संघ, (1997) 5 एस० सी० सी० 536, पृष्ठ 635।

MGIPLPF-21/M/O L&J/ND/99–6-11-2001

PLD–92. CLXIX (Hindi)
100—2000 DSK-IV

मूल्य--96.00 रुपये

प्रबन्धक, भारत सरकार फोटोलिथो मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।